International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 390-392

सल्तनत काल में स्त्रियों की स्थिति का अध्ययन

डॉ० आनन्द कुमार
एक्टेन्शन लेक्चरार (इतिहास), रा. म. महाविद्यालय, महेन्द्रगढ़, हरियाणा, भारत।

सारांश
जब से सृष्टि बनी है तब से स्त्री और पुरुष इसका अहम अंग रहे हैं। मनुष्य के क्रमिक विकास में अनेक उतार–चढ़ाव आए हैं। कंदराओं से निकलने के बाद सामाजिक रूप से रहने तक के क्रम में पुरुष और स्त्री की स्थिति में अनेकानेक परिवर्तन हुए। वैदिक काल से वर्तमान काल तक स्त्रीयों की स्थिति, उनकी सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक अधिकारों में बहुत उतार–चढ़ाव रहे हैं। यूनान में स्त्रियों का दर्जा शाक–भाजियों के बराबर था। डॉ. सम्पूर्णानन्द के अनुसार भारत में स्त्रियों की स्थिति ऐसी कभी नहीं रही कि भारतीयों को इस विषय को लेकर लज्जित होना पड़े। इसके विपरीत अन्य बहुत से देशों में नारियों की स्थिति बड़ी दयनीय रही हैं वैदिक काल से लेकर अब तक भारतीय नारी की स्थिति में बड़े उतार–चढ़ाव आए हैं। स्त्रीयों के जीवन के इन उतार–चढ़ाव भरे समय की सल्तनत काल में क्या स्थिति रही थी इसको इस शोध–पत्र में दिखाने का प्रयास करेंगे।

मुख्य शब्द : स्वतन्त्रता, स्त्रियां, विवाह, शिक्षा, धार्मिक, पतिगृह, मान्यता।

प्रस्तावना
अलग–अलग देशों में और अलग–अलग काल में स्त्रियों की स्थिति में बड़ा अन्तर रहा है। डॉ. सम्पूर्णानन्द के अनुसार भारत में स्त्रियों की स्थिति ऐसी कभी नहीं रही कि भारतीयों को इस विषय को लेकर लज्जित होना पड़े। इसके विपरीत अन्य बहुत से देशों में नारियों की स्थिति बड़ी दयनीय रही हैं वैदिक काल से लेकर अब तक भारतीय नारी की स्थिति में बड़े उतार–चढ़ाव आए हैं। वैदिक काल में स्त्रियों को पुरुषों के समान महत्व प्राप्त था। वे धार्मिक, सामाजिक कार्यों में पुरुषों का साथ देती थीं। बौद्ध काल तक आते–आते उनकी स्थिति खराब हो गई। तुर्कों के आगमन के बादनारी की स्थिति हमेशा की तुलना में सबसे खराब रही। उसे बहुत अधिक बंधनों में रहना पड़ा। हिन्दू समाज के बाहर स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं रही थी। 'ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ विमेन' में डेयर्स ने बताया है कि यूनान में स्त्रियों का दर्जा शाक–भाजियों के बराबर था। यूनान में अफलातून और अरस्तू जैसे प्रसिद्ध दार्शनिक पैदा हुए। राजनीतिक, विज्ञान और दर्शन के क्षेत्र में यूनान ने दूसरों का नेतृत्व किया परन्तु स्त्रियों की ओर वहां के विद्वानों ने ध्यान नहीं दिया, यह आश्चर्य का विषय है। रोम में भी आरम्भ में ऐसी ही दशा थी। वहां सन्तान पिता के अधीन रहती थी। पिता के निधन के बाद पुत्र को स्वतन्त्र हो जाता था परन्तु पुत्री फिर भी स्वतन्त्र नहीं रह सकती थी। कोई दूसरा परिवार का बड़ा व्यक्ति उसका अभिभाव होता था। उत्तरी यूरोप की नार्डिक जातियों में भी पिता को प्रायः ऐसे ही अधिकार प्राप्त थे। प्रायः सभी जंगली और बर्बर तथा अर्द्धसभ्य जातियों में स्त्री का पद पुरुष से छोटा था। उन्हें पुरुष के अंकुश में रहना पड़ता था। चीन में घर पर नारी को ऊंचा स्थान प्राप्त था। मिस्त्र में अन्य अनेक देशों की तुलना में स्त्रियों का स्थान बहुत ऊँचा था। वहाँ स्त्रियां धर्मगुरु, धर्माचार्य तक की श्रेणी में आ सकती थीं। विशेष अवसरों पर पति–पत्नि एक ही मचं पर एक ही कुर्सी पर बैठा करते थे। ईसाइयों में नारी को आदरणीय स्थान नहीं मिल सका। जिस प्रकार तुलसीदास जी एक स्थान पर नारी के बारे में कह गए हैं कि *'ढोल गंवार शुद्र पशु नारी, ये सकल ताड़ना के अधिकारी।* उसी प्रकार महात्मा टर्टयुलिआन ने नारी के बारे में कहा है *'तुम नरक का द्वार हो, नर ईश्वर की प्रेमिका है, तुम उनको नष्ट कर देती हो।*

वैदिक काल में भारत में स्त्रियों का स्थान बहुत ऊँचा था। धर्म और अध्यात्मशास्त्र की ऊँची से ऊँची भूमिकाओं में स्त्रियों की गति थी। बृहदारण्यक उपनिषद् का सारभाग याज्ञवाल्क्य की पत्नी मैत्रेयी की ब्रह्म–जिज्ञासा के परिणाम स्वरूप लिखा गया। परन्तु जब आर्यों का अनार्य जातियों से सम्पर्क हुआ तब उनका तो अनार्यों पर प्रभाव पड़ा ही, आर्य भी उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके।[1] अरब, पठान और मुगलों के आक्रमणों के कारण आर्यों की स्थिति में तेजी से परिवर्तन हुआ। स्त्रियों की स्थिति और भी खराब हो गई। उनसे वेद पढ़ने का अधिकार छिन गया। यहां मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति पर विचार किया जा रहा है।[2]

इस युग में हिन्दुओं में स्त्री का स्थान पुरुष से नीचा माना जाता था। वह बाल्यावस्था में पिता के अनुसार, युवावस्था में पति के अनुसार और विधवा काल में अपने ज्येषठ पुत्र के अधीन रहने को विवश थी। हिन्दू नारी से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह अपने पति की सेवा करे और घर का सारा कार्य करे। पुत्री का जन्म अशुभ माना जाता था। राजपूत लोग तो पुत्री को जन्म के कुछ समय बाद समाप्त ही कर देते थे। स्त्रियों को चारदीवारी के अन्दर रहना पड़ता था। उन्हें पुरुषों की भांति स्वतन्त्रता नहीं थी।[3]

मुस्लिम स्त्रियों पर हिन्दू स्त्रियों की तरह अधिक नियन्त्रण नहीं था। उन्हें पति के अधीन ही रहना पड़ता था परन्तु पुनः विवाह की स्वतन्त्रता थी। लड़कियां लड़की की सहेलियों के साथ या भाईयों के साथ ही खेल सकती थीं। स्त्री को पुरुष के साथ घूमने जाने की छूट नहीं थी। शादी के बाद नारी अपने पति के साथ रहती थी। पतिगृह में उसकी अपनी सपत्नीक या घर के सदस्यों के कारण पति से कलह भी कभी हो जाती थी। तुर्क मुलसमानों की स्त्रियों को अपेक्षाकृत कुछ स्वतन्त्रता प्राप्त थी। वे कभी–कभी

मस्जिद में धर्मोपदेश सुनने जाती थीं। उनसे भी अधिक पारसी स्त्रियां स्वतन्त्रता का उपभोग करती थीं।[4]

नारियों में पर्दा–प्रथा का मामला भी जुड़ा हुआ है। यह प्रथा कब से शुरू हुई, यह निश्चित नहीं है। कुछ विद्वानों का कथन है कि भारत में पर्दा–प्रथा का प्रचलन मुसलमानों के भारत में आगमन के बाद शुरू हुआ और कुछ की मान्यता है कि यह प्रथा थोड़े–बहुत रूप से भारत में पहले से ही चली आ रही थी। मिस कूपर की मान्यता है कि यह प्रथा मुसलमानों द्वारा शुरू हुई। प्राचीन भारत में तो स्त्रियां स्वतन्त्र थीं। ऐसी ही मान्यता अल्तेकर की है। उनका कथन है कि पर्दा–प्रथा भारत के निवासियों के लिए अपरिचित थी। इसके विपरीत एक मत यह है कि पर्दा–प्रथा हिन्दुओं में विद्यमान थी। इसी मत को मानने वाले डॉ वाहिद मिर्जा हैं। उनकी मान्यता है कि भारत से बाहर मुस्लिम देशों में इसका प्रचलन नहीं था। इस प्रथा का आरम्भ उत्तरी भारत के कुछ सामाजिक रीति–रिवाजों तथा राजपूत प्रभाव के कारण हुआ। मंगोलों के प्रादुर्भाव के कारण यह प्रथा जटिल हो गयी थी। इस मत का खण्डन करते हुए डॉ. आशीर्वादीलाल ने बताया है कि पर्दा प्रथा सम्बन्धित यह कथन गलत है। यह ऐतिहासिक दृष्टि से उचित नहीं है। राजपूत स्त्रियां आवश्यकता पड़ने पर युद्धस्थल में लड़ने के लिए जाया करती थीं। राजपूतों का इतिहास भी ऐसा संकेत नहीं देता जिससे भारत में पर्दा–प्रथा के प्रचलन की पुष्टि होती हो।[5]

एक मत यह भी है कि भारत में पर्दा–प्रथा तो थी परन्तु वह आंशिक रूप में थी। मुसलमानों के भारत में आने पर इस प्रथा को बल मिला। मंगोलों की मातृभूमि में पर्दा का प्रचलन था। मंगोलों के आने के बाद पर्दा–प्रथा में तीव्रता आ गई थी। भारतीयों ने इसे अपनी रक्षा के उद्देश्य से अपनाया। के.एम. अशरफ इसी मत के मानने वाले हैं। जो भी हो भारत में थोड़ी–बहुत पर्दा–प्रथा प्रचलित थीं जिसे आधुनिक और संस्थागत रूप में भारत में मुसलमानों के कारण बल मिला था। हिन्दुओं में पर्दा–प्रथा अपनाने का कारण यह था कि तुर्क शासक और पदाधिकारी हिन्दू नारियों पर मनमाने अत्याचार करते थे। अमीर लोग हिन्दुओं की रूपवती युवतियों को लेकर चले जाते थे। उनसे बालिकाओं की सुरक्षा करने के उद्देश्य से पर्दा–प्रथा का प्रचलन हुआ था। इसके अलावा विदेशी मुसलमानों के रीति–रिवाजों के कारण भी यह प्रथा हिन्दुओं ने अपनाई थी।

गांवों में स्त्रियां विशेष पर्दा नहीं करती थीं। जब कोई अजनबी व्यक्ति उनके दिखाई पड़ता था या वह पास से निकलता था तो स्त्री साड़ी का पल्ला अपने मुंख पर खिसका लेती थीं। जीवन के रहन–सहन के अनुसार पर्दे की पाबन्दी थी। जिस प्रकार कृषकों का जीवनस्तर निम्न था उसी प्रकार उनकी महिलाओं को नाममात्र का पर्दा करना पड़ता था। उच्च घरानों की महिलाओं के लिए पर्दा जरूरी था और वह उनके खानदान के लिए गौरव की प्रतिष्ठा की वस्तु माना जाता था। अमीर घरानों की महिलाएं नज़ाकत और बड़ापन का प्रदर्शन करने के लिए डोली या पालकी में ही बैठकर चलती थीं। विद्यापति और जायसी ने मध्ययुगीन पर्दा–प्रथा का वर्णन किया है। उन्होंने साधारण वर्ग के लोगों की भी पर्दा–प्रथा का वर्णन किया है। फखरूद्दीन मुबारकशाह ने लाहौर के गजनवी शसक बहरामशाह की हिन्दू दासी की एक दिलचस्प कहानी वर्णित की है। जब वह बीमार हुई थी और डॉक्टर ने उसे देखने के लिए कहा तो यह तय हुआ था कि डॉक्टर आंखों पर पट्टी बांधकर जांच करे। रजिया बेगम पर्दा नहीं करती थी, इसलिए उसके दरबारी उससे अप्रसन्न थे। फीरोज तुगलक पर्दा का समर्थक था। उसने मुस्लिम स्त्रियों को दरगाह में जाना निषिद्ध कर दिया था। उसने प्रजा में पर्दा करने का आदेश जारी कर दिया था। मुस्लिम स्त्रियां हिन्दू–नारियों की तुलना में शरीर ढ़कने का अधिक ध्यान रखती थीं। डोली और पालकी का रिवाज मुसलमानों में था। उनकी देखा–देखी यह हिन्दुओं में भी आ गया था। बड़े सम्पन्न घराने के हिन्दू महिलाओं के आने जाने के लिए पालकी की व्यवस्था करते थे।[6]

विवाह एक प्राचीन संस्कार है। मध्य युग में स्त्रियों को पुरुष के उपभोग की वस्तु मान लिया गया था। उन्हें विशेष सम्मान प्राप्त नहीं था। यही कारण है कि बहुविवाह की प्रथा भी मध्ययुग में आम बात हो गयी थी। शासकों और अमीरों के यहां अनेक–अनेक पत्नियां रहती थीं। यद्यपि कुरान में चार पत्नियां रखने की अनुमति दी हुई है फिर भी मुसलमान लोग कई पत्नियां रख लेते थे। घर में यदि सुन्दर दासी आ जाती थी तो उसे भी महत्व मिल जाता था। उसके आगे गृह–स्वामिनी की भी उपेक्षा कर दी जाती थी। रजिया की उपमाता 'शाह तुर्कन' पहले दासी थी। वह अपने सौन्दर्य के कारण ही रानी बनी थीं।[7]

विवाह की कोई निश्चित उम्र नहीं थी। हिन्दू लोगों में विवाह कम उम्र में ही कर दिए जाते थे। सुल्तान और अमीर मनमाने ढंग से हिन्दुओं की युवतियां के साथ अत्याचार करते थे इसी भय से हिन्दुओं में बाल–विवाह चल पड़ा था। कन्या की शादी लगभग 13 वर्ष की उम्र तक कर दी जाती थी। हिन्दू लोग अपनी उपजाति में भी विवाह कर देते थे बशर्ते उपजाति अपनी से ऊँची रही हो। मुसलमानों में जाति का वैसा बंधन नहीं था। मुसलमानों में सगे भाई–बहन को छोड़कर चाचा, ताऊ के लड़के–लड़की में भी आपस में शादी कर सकते थे। कभी–कभी धन के लोभ में आकर पुरुष अपने से अधिक उम्र की नारी से भी विवाह कर लेता था। हिन्दुओं में विधवा–विवाह वर्जित था। मुसलमान लोग विधवाओं से भी शादी कर लेते थे। हिन्दुओं में विधवा नारी की स्थिति बड़ी दयनीय रही थी। उसे सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। सुबह–सुबह उसक दर्शन ही अशुभ माने जाते थे। वे सधवा नारियों की तरह सुखों का उपभोग नहीं कर सकती थीं। उन्हें बनाव श्रृंगार की अनुमति नहीं थी। वे रंगीन वस्त्र तक धारण नहीं कर सकती थीं। हिन्दुओं में अन्तर्जातीय विवाह का प्रचलन नहीं था, जबकि मुसलमानों में यह प्रचलित था। मुसलमानों मुें पत्नी तलाक देना आसान था। हिन्दू लोग प्रायः तलाक नहीं देते थे। इब्नबतूता ने चार विवाह किए थे। उसने बारी–बारी से पहली पत्नियों को तलाक दे दिया था। बहुविवाह के संबंध में टॉमस ने लिखा है कि 'शरह के अनुसार मुसलामन चार विवाह कर सकता है और तलाक भी दे सकता है, पर भारत के लोग प्रायः एक ही विवाह करते हैं।' जो लोग कई पत्नियां रखते थे उनके यहां गृह–कलह की स्थिति उत्पन्न होने की प्रायः आशंका रहती थी।

गरीब लोग आर्थिक मजदूरी तथा अपनी साधारण सामाजिक प्रतिष्ठा के अनुसार प्रायः एक ही विवाह कर पाते थे। एकाधिक पत्नियों के कारण बढ़े हुए खर्च को वहन करना उनके लिए आसान नहीं था। मुसलमानों में कन्या की शादी के समय दासियां भी दी जाती थी जो ससुराल में उसकी सेवा करती थीं।[8]

हिन्दू समाज में एक बड़ी विचित्र प्रथा प्रचलित थी – सती प्रथा। पत्नी अपने पति की मृत्यु हो जाने पर उसके शव के साथ जीवित ही चिता में जलकर प्राण त्याग देती थी। यही प्रथा सती–प्रथा कहलाती थी। यह प्रथा सबसे अधिक राजपूतों में प्रचलित थी। अन्य उच्च वर्ग के लोगों में भी यह प्रथा विद्यमान थी। यह प्रथा हमारे देश में प्राचीनकाल से चली आ रही है। सल्तनत काल में भी यह प्रथा जारी रही। इस प्रथा के बारे में इब्नबतूता ने वर्णन किया है 'पति की मृत्यु के पश्चात् पत्नी का अपने आपको जला डालना बड़ा प्रशंसनीय कार्य समझा जाता है, किन्तु यह प्रत्येक के लिए

अनिवार्य नहीं। जब कोई विधवा अपने आपको जला डालती है तो उसके घर वालों का सम्मान बढ़ जाता है और वह पति–भक्ति के प्रसिद्ध हो जाती है। जो विधवा अपने आपको नहीं जलाती उसे मोटे वस्त्र धारण करने पड़ते है और वह बड़ा दुखी जीवन व्यतीत करती है।[9] पति–भक्ति के अभाव के कारण लोग उसे घृणा करते है। किन्तु वह जलने के लिए बाध्य नहीं की जाती।' स्त्रियां सती दो प्रकार से होती थीं। एक तो पति के शव के साथ ही जल कर समाप्त हो जाती थी। दूसरे वह उसके साथ न जलकर पति की किसी प्रिय वस्तु के साथ जलकर अपने आपको समाप्त कर लेती थी। इनमें से पहले प्रकार के करण को सहमरण तथा दूसरे प्रकार के मरण को अनुमरण कहते थे। अनुमरण परिस्थिति विशेष में ही किया जाता था। उदाहरणार्थ जब कोई स्त्री गर्भवती होती थी तो वह बालक को जन्म देने तक जीवित रहती थी। बालक को जन्म देने के बाद ही सती होती थी। इतना ही नहीं यदि किसी राजा के कई पत्नियां होती थी तो पटरानी तो राजा के शव के साथ जलती थी और शेष रानियां पृथक् चिता में जलती थी।

सती होने वाली पत्नी पहले स्नान आदि कर पवित्र होती थीं। तदन्तर वह आभूषण धारण करती थी। उसके साथ एक जुलूस सती होने के स्थान तक जाता था। सती होने का स्थान प्रायः तालाब के पास होता था। सती–प्रथा के लम्बे समय तक चलते रहने का एक कारण यह रहा कि हिन्दू विधवा का जीवन बड़ा कष्टमय व्यतीत होता था। इसलिए शेष जीवन भर कष्अ सहते रहने की तुलना में विधवा थोडी देर कष्ट पाना ही अच्छा समझाती थी और सती हो जाती थी। जो नारी पति के मरने पर सती नहीं होती थी तो उसे और उसके परिवार वालों को भी शर्मिंदा होना पड़ता था। निकालो कोन्टी ने बताया है कि जो नारी सती नहीं होती थी उसके पति की सम्पत्ति उसके बच्चों के नाम न करके अन्य किसी संबंधी को दे दी जाती थी। अलबरूनी ने बताया है कि विधवा स्त्री के सामने दो ही मार्ग शेष होते हैं, प्रथम, वह जीवनभर दुःख तथा अपमानतापूर्ण जीवन व्यतीत करे, दूसरे, वह सती हो जाए। अधिकतर स्त्रियां दूसरा मार्ग ही अपनाती थीं।[10] इब्नबतूता ने लिखा है कि जब कोई स्त्री सती होना चाहती थी तो इसके लिए उसके परिवार वालों को सुल्तान से अनुमति लेनी पड़ती थी।

राजपूत जाति की नारियां सतीत्व का बहुत अधिक ध्यान रखती थीं। इसी कारण उनमें जौहर–प्रथा चली आ रही थी। राजपूत जाति लड़कू जाति रही है। जब राजपूत लोग लड़ाई के लिए प्रस्थान करते थे और राजपूत स्त्रीयों को यह निश्चत हो जाता था कि उनके पति लड़ाई में विजय प्राप्त नहीं कर सकेंगे और युद्ध भूमि में वीरगति को प्राप्त होंगे तो वह विपक्षीयों के हाथों में पड़ने की आशंका से अपने स्वाभीमान की रक्षा करने के लिए अपने पतियों को तिलक लगाकर चरण–स्पर्श कर युद्ध के लिए विदा कर स्वयं अग्नि में अपने प्राणों की आहुति दे देती थी। उधर राजपूत भी प्राणों का मोह छोड़कर तब तक लड़ते थे जब तक कि वे समाप्त नहीं हो जाते थे। जौहर के अनेक उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। कम्पिला के राजा ने बहाउद्दीन गुशस्प को शरण दी थी। इसलिए मुहम्मद तुगलक ने कम्पिला के राजा पर आक्रमण किया था। कम्पिला के राजा ने लड़ना स्वीकार कर लिया था, परन्तु शरणार्थी को शरण न देना स्वीकार नहीं किया। उसने युद्ध क्षेत्र में मर–मिटने की घोषणा पहले से ही कर दी थी। इसलिए अनेक स्त्रियों ने स्नान कर शरीर पर चंदन का लेप कर अग्नि में प्रविष्ट होकर अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया था। शाही घराने की महिलाओं के पीछे उनसे संबंधित अन्य स्त्रीयों ने भी अग्नि में अपने प्रणों की आहुति दे दी थी। इसी प्रकार रणथम्भौर के राजा हम्मीरदेव ने काफी समय तक उलाउद्दीन की सेना का सामना किया और बाद में जीत की आशा न रहने से जौहर करवाया था।[11] इस काल में स्त्री शिक्षा प्रचलित थी, परन्तु उसका लाभी उच्च वर्ग या सम्पन्न वर्ग के लोग ही उठा पाते थे। मुसलमान नारियों के लिए शिक्षा की खास प्रकार से व्यवस्था की जाती थी। रजिया सुल्तान गद्दी पर बैठती और शासन चलाती थी। वह पढ़ी–लिखी थी। हिन्दुओं में भी अनेक महिलाओं के उदाहरण मिलते हैं, जो विदुषी थीं। अवन्तसुन्दरी, देवलरानी, रूपमती, पद्मावती और मीराबाई इस युग की सभ्य, शिक्षित नारियां थीं। अवन्तसुन्दरी ने प्राकृत काव्य की शब्दकोश का निर्माण किया था। मीराबाई ने कृष्ण की भक्ति से संबंधित असंख्य पद रचे थे, जिनमें से अनेक पद जनता की जुबान पर अभी तक रेख हुए हैं। अशरफ ने उस समय की अनेक महिलाओं की चर्चा की है। इस काल में नृत्य, संगीत तथा चित्रकला की शिक्षा भी दी जाती थी। ये कलाएं काफी प्रचलित थीं। स्त्रियां इन कलाओं में विशेष रूचि रखती थीं। उस समय शिक्षा का ऐसा प्रचार नहीं था, जैसा आज है। गरीब स्त्रीयां शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाती थीं।

निष्कर्ष

इस हम अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि सल्तनत काल में स्त्रियों की दशा सन्तोषजनक नहीं थी। मुस्लिम स्त्रियों की तुलना में हिन्दू स्त्रियों की दशा अधिक दयनीय थी। मुस्लिम शासक जाति थीं, उनकी स्त्रियों को अपेक्षाकृत बहुत अधिक सुविधाएं प्राप्त थीं। परन्तु स्त्री को पुरुष के मनोरंजन की वस्तु ही माना जाता था। इस कारण उन्हें पर्दे आदि के बंधनों में रहना पड़ता था। उस समय हिन्दू नारियों में बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा, सती–प्रथा जोरों पर थी। नारी को घर की चारदीवारी में रहना पड़ता था। पति की सेवा करना ही उसके जीवन का मुख्य उद्देश्य था।

सन्दर्भ

1. मजूमदार, आर.सी., प्राचीन भारत, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1962, पृ. 87
2. लेटर हिन्दु सीविलाईजेशन (1800–1300), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पृ.145
3. ओझा, गौरीशंकर, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, प्रयाग, 1958, पृ. 63
4. श्रीवास्तव, ए.एल., मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, आगरा, पृ. 23
5. अशरफ, के.एम., लाईफ एण्ड कंडीशंस दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, दिल्ली, 1959, पृ. 63
6. वही, पृ. 71
7. रशीद, ए., सोसायटी एण्ड कलचर इन मीडिवल इण्डिया, कलकत्ता, 1969, पृ. 132
8. अशरफ, के.एम., वही, पृ. 148
9. वही, पृ. 151
10. अलबुरूनी वर्णित भारत, भाग–1, जयपुर, 1994, पृ. 157
11. ओझा, फणीन्द्रनाथ, मध्यकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, दिल्ली, 1988, पृ. 68